भारत में पवित्र वन

अन्वेषा बोरठाकुर

लंबे अरसे से पवित्र उपवनों का अस्तित्व मनुष्य के हस्तक्षेप से मुक्त रहा है। इसलिए मानवशास्त्रीय, सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय दृष्टि से इनका काफी महत्व है। भारत में अधिकांश पवित्र उपवन पूर्वोत्तर राज्यों और पश्चिमी घाट के इलाके में स्थित हैं। ये दोनों वे क्षेत्र हैं जिनकी गिनती जैव विविधता की दृष्टि से दुनिया के अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थानों में की जाती है। लेकिन दुर्भाग्य से आज भारत में पवित्र उपवनों की संख्या बड़ी तेज़ी से कम होती जा रही है। ऐसे में इनके संरक्षण के लिए समुचित योजना बनाने का समय आ गया है।

पवित्र उपवन (सैक्रेड ग्रोव्स) वनों के ऐसे टुकड़े या प्राकृतिक वानस्पतिक इलाके होते हैं जो स्थानीय लोक देवी-देवताओं या प्राचीन व वृक्ष आत्माओं को समर्पित होते हैं। ये उपवन मानव शास्त्रीय (एंथ्रोपॉलॉजी), सांस्कृतिक, आर्थिक और इकॉलॉजी के नज़रिए से काफी महत्वपूर्ण होते हैं। स्थानीय समुदाय अपनी धार्मिक आस्थाओं और उनसे जुड़े रीति-रिवाज़ों के चलते उनका संरक्षण व रक्षा करते हैं। ये उपवन कई तरह के हो सकते हैं। इनमें अनेक प्रजातियों के ढेरों वृक्ष हो सकते हैं या फिर वे कुछ पेड़ों के झुरमुट तक सीमित हो सकते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनका वानस्पतिक इतिहास क्या रहा है। जे.डी. ह्यूज और एम.डी.एस. चंद्रन के अनुसार ये उपवन ऐसे लैंडस्कैप हैं, जिनमें वनस्पति, जीवन के अन्य रूप और भौगोलिक फीचर्स शामिल होते हैं तथा मानव समुदाय उनका संरक्षण इस विश्वास के साथ करता है कि उन्हें अपने कुदरती रूप में सुरक्षित रखना दैवी शक्तियों या प्रकृति के साथ अपने सम्बंधों का इज़हार है। इस तरह के उपवन जो कुछ पेड़ों के झुरमुट से लेकर कई एकड़ में फैले वन भी हो सकते हैं, अक्सर जैव-विविधता से समृद्ध क्षेत्रों में स्थित होते हैं। भारत में ये अधिकतर पूर्वोत्तर और पश्चिमी घाट क्षेत्र में पाए जाते हैं। दुनिया में इन दोनों ही क्षेत्रों की गिनती जैव-विविधता से सम्पन्न हॉटस्पॉट्स में होती है।

भारत में स्थानीय स्तर पर ढेरों अलग-अलग समुदाय बसे हैं, जिनकी अपनी आस्थाएं और परम्पराएं हैं। इस कारण यहां एक बहुत ही बहुमूल्य पारम्परिक ज्ञान का आधार रहा है। देश में अब भी प्रकृति की पूजा करने के कई रूप विद्यमान हैं और ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते आए हैं। नरकट (बेंत की जाति का एक पौधा) से लेकर अंजीर और केंकड़े से लेकर मोर व बाघ तक को आज भी कई आदिम समाजों में पूजा जाता है। पवित्र उपवनों में प्राकृतिक या लगभग प्राकृतिक वनस्पतियां होती हैं, जिनका संरक्षण स्थानीय समुदाय कुछ सामाजिक प्रतिबंधों के ज़रिए करते हैं। इनमें इन समुदायों के आध्यात्मिक और पारिस्थितिक लोकाचार प्रतिबिंबित होते हैं।

ये पवित्र उपवन अंटार्कटिका को छोड़कर अन्य तमाम महाद्वीपों में पाए गए हैं। भारत में इस तरह के स्थलों की संख्या 38 है जो कि अन्य देशों की तुलना में सर्वाधिक है। वैसे कुछ अन्य अध्ययन कहते हैं कि भारत में ऐसे उपवन स्थलों की संख्या कहीं ज़्यादा है।

दुनिया भर के कई पारंपरिक समाजों में प्राकृतिक परिवेश के साथ मनुष्य के रिश्तों पर वर्जनाओं या प्रतिबंधों का प्रभाव रहा है। संसार की विभिन्न संस्कृतियों में ऐसे प्रतिबंधों का अस्तित्व रहा है जिनसे पर्यावरण के साथ मनुष्य के सम्बंधों का संचालन/नियमन होता रहा है। ये इस बात की मिसाल हैं कि प्रकृति और मनुष्य के बीच सम्बंध सरकारी कानून और नियमों की बनिस्बत सामाजिक रिवाज़ों के आधार पर कहीं बेहतर ढंग से संचालित किए जा सकते हैं। माना जाता है कि किसी भी उपवन में फलने-फूलने वाली तमाम वनस्पतियां, जिनमें झाड़ियां और लताएं भी शामिल हैं, वहां शासन करने वाले वन देवता की पनाह में रहती हैं। अधिकांश उपवनों में तो पेड़ों के ठूंठों को भी उखाड़ने की अनुमति नहीं होती। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि किसी भी

प्रकार का विघ्न स्थानीय देवता को नाराज़ कर देगा और इसका खामियाज़ा किसी बीमारी, प्राकृतिक आपदा या फसलों को नुकसान होने के रूप में भुगतना पड़ेगा। उदाहरण के लिए मेघालय में रहने वाले गारो और खासी जनजाति समुदायों के पवित्र उपवनों में मानव हस्तक्षेप सर्वथा प्रतिबंधित है। यह किसी आश्चर्य से कम नहीं है कि पिछले कुछ दशकों में सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्र में हुए बदलावों के कारण पैदा हुए तमाम दबावों के सामने भी ये उपवन न केवल टिके हुए हैं, बल्कि इनमें से अधिकांश उपवन अच्छी स्थिति में भी हैं।

जहां तक पाबंदियों का सवाल है, यह अलग-अलग उपवनों में अलग-अलग रही है। कुछ वनों में सूखी पत्तियों और गिरे हुए फलों को भी हाथ नहीं लगाया जाता, जबकि कुछ उपवनों में सूखी पत्तियों और मृत लकड़ी व पत्तियां बटोरने की अनुमति होती है। हालांकि इन दोनों ही मामलों में जीवित वृक्षों और उनकी शाखाओं को बिलकुल भी नहीं काटा जाता। माधव गाडगिल और वी.डी. वर्तक का मानना है कि पवित्र उपवनों की धारणा सामाजिक विकास के उस दौर में उभरी जब मनुष्य शिकार और संग्रहण के चरण में थे। अगर यह सही है तो इसका मतलब है कि पवित्र उपवन सदियों से हमारे बीच रहे हैं; संभवतः छठी सदी से पहले से जब पश्चिमी घाट क्षेत्र में खेती शुरू हुई होगी। पश्चिमी घाट में समृद्ध वर्षा वनों में अद्भुत जैव-विविधता के संरक्षण का श्रेय इन्हीं पवित्र उपवनों को जाता है।

ऐसा भी विश्वास रहा है कि वन देवता बहुत ही उग्र होते थे। यदि कोई गलती करता था तो नाराज़ वन देवता उसे मौत से कम सज़ा नहीं देते थे। गाडगिल और वर्तक के अनुसार नाराज़ वन देवता के रौद्ररूप की कई कहानियां प्रचलित हैं।

एक कहानी महाराष्ट्र के जावली तालुका की है। वहां करीब 30 साल पहले मोलेश्वर क्षेत्र के श्रद्धालुओं ने अपने इष्टदेव के लिए एक मंदिर बनाने का फैसला किया। यह देवता आसरा बनाने की बात को तो सहन कर सकता है मगर उसके लिए जंगल से लकड़ी काटने को नहीं। बहरहाल, लोगों ने थोड़ा ज़ोखिम उठाकर मंदिर निर्माण के वास्ते लकड़ी हासिल करने के लिए एक पवित्र उपवन में जाम्बुल का पेड़ गिराना चाहा। उन्होंने पेड़ गिराना शुरू ही किया था कि वह अचानक गिर पड़ा और उन तीनों लोगों की जान ले बैठा जो उसे काट रहे थे।

दूसरी कहानी वेल्हे तालुका की है। वहां एक उपवन में एक व्यक्ति पेड़ के तने के कोटर में बैठी वैरेनस प्रजाति की एक छिपकली को धुआं करके बाहर निकालने का प्रयास कर रहा था। किसी कारण से उस पेड़ में आग लग गई और उस आग में वह छिपकली मर गई। इसके बाद वह व्यक्ति भी भयंकर रूप से बीमार पड़ गया। वह मौत के मुंह से तभी बाहर आ सका, जब उसने वन देवता के समक्ष एक बकरे की बलि दी। वहीं दूसरी ओर एक वन देवता ने इसी वेल्हे तालुका के मनगांव के लोगों को उस समय एक वृक्ष को काटने की अनुमति दे दी, जब पूरा गांव आग में तबाह हो गया था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कम से कम कुछ अरसा पहले तक तो अधिकांश स्थानीय लोग पवित्र उपवनों से सम्बंधित प्रतिबंधों को मानते आए हैं। इनका उल्लंघन या तो बेहद विषम परिस्थितियों में हुआ या फिर बाहरी लोगों द्वारा। ये बाहरी लोग या तो उन प्रतिबंधों से अवगत नहीं थे या फिर उन्हें उनका कोई भय नहीं रहा होगा।

पश्चिमी घाट में 'इनाम उपवन' की भी परंपरा रही है। ये ऐसे उपवन होते हैं जिनके बारे में माना जाता है कि वहां कोई वन देवता निवास नहीं करता। इन उपवनों को उन वन देवताओं के पुजारियों के लिए छोड़ दिया जाता है। ये पुजारी उन पवित्र उपवनों के फलों और अन्य उत्पादों को बेचकर आय अर्जित कर सकते हैं, लेकिन उन्हें वहां कोई विघ्न डालने की अनुमति नहीं होती।

मौजूदा परिदृश्य

दुर्भाग्य से आज भारत के पवित्र उपवन खतरे में हैं। उनकी संख्या, उनका आकार और उनसे जुड़ी जैव विविधता बड़ी तेज़ी से संकुचित होती जा रही है। सदियों पुराने घने पवित्र उपवन विरल जंगलों या झाड़-झंखाड़ में तब्दील होते जा रहे हैं। और ये झाड़-झंखाड़ फिर जल्दी ही ऐसी बंजर

ज़मीनों में बदल जाते हैं, जिनका कोई पर्यावरणीय महत्व नहीं रह जाता।

देश के जैव विविधता से सम्पन्न इलाकों में ये पवित्र उपवन इन क्षेत्रों में पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं। इन पवित्र उपवनों तक पहुंच और उनमें कोई बाहरी दखल सांस्कृतिक रूप से प्रतिबंधित था। इसी वजह से इनमें उपस्थित प्राकृतिक संसाधनों के मानवीय दोहन का असर भी काफी सीमित रहा। इसी का नतीजा था कि ये पवित्र उपवन जैव-विविधता के महत्वपूर्ण खज़ानों के रूप में विकसित हुए और वहां लंबे समय तक जटिल एवं विविधतापूर्ण प्राकृतिक प्रक्रियाएं फलती-फूलती रहीं। इन पवित्र उपवनों के विनाश के साथ ही जीव-जंतुओं व वनस्पतियों की अत्यंत दुर्लभ व स्थानीय प्रजातियां गायब होने लगी हैं, जो इकॉलॉजी की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण केरल के कुलतुपुझा के जंगलों में पाया जाने वाला एक पेड़ सायज़ीजियम ट्रेवेनकोरिकम का अस्तित्व पूरी तरह से समाप्त हो गया है।

आज़ादी के बाद से ही पवित्र उपवनों से सम्बंधित पाबंदियां घटती गई हैं। अब कई उपवनों में सूख चुके पेड़ों के ठूंठ और सूखी पत्तियां हटाना आम हो गया है, जबकि पहले अधिकांश उपवनों में इसकी अनुमति नहीं होती थी। अब तो ऐसा भी देखने को मिल रहा है कि गांव वाले ईंधन के लिए इन उपवनों पर ही निर्भर हो गए हैं। हालांकि कई उपवनों में जीवित वृक्ष काटने की मनाही है, लेकिन धीरे-धीरे इसमें भी ढील देखने को मिल रही है।

पवित्र उपवनों के विनाश के लिए कई कारक ज़िम्मेदार हैं। इनमें सबसे अहम है इन उपवनों से जुड़ी तथाकथित आस्था प्रणाली का कमज़ोर होना। स्थानीय समुदायों के युवाओं में पारंपरिक आस्था और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति विश्वास कम हो रहा है। कई मामलों में तो वे वन देवता या वृक्षात्मा जैसी किसी अवधारणा को भी स्वीकारने से इन्कार कर देते हैं। उनके लिए शिक्षित और आधुनिक होने का मतलब है पवित्र उपवनों के सांस्कृतिक, धार्मिक और पर्यावरणीय महत्व को हाशिए पर रखकर उनका दोहन मात्र आर्थिक लाभों के लिए करना। युवा पीढ़ी चाहती है कि पारंपरिक रूप से इन पवित्र उपवनों पर उसे जो अधिकार मिला हुआ है, उसके तहत इन वनों के पेड़ों की लकड़ी को बेचकर उसका पूरा आर्थिक लाभ उठाया जाए। लेकिन इन तात्कालिक आर्थिक फायदों के फेर में पवित्र उपवनों सहित तमाम प्राकृतिक संसाधनों के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया है।

पारंपरिक मूल्यों का खत्म होना पवित्र उपवनों के लिए एक बड़ा खतरा है। उपवनों से जुड़ी आस्थाओं की अनुपस्थिति में इस तरह के क्षेत्रों का संरक्षण सरकारी दखल के बगैर करना बहुत ही मुश्किल कार्य है। सबसे ज़्यादा खतरा तो 'इनाम उपवनों' को है, क्योंकि वहां कोई भी वन देवता निवास नहीं करता। लेकिन एक पेंच यह भी है कि अगर इन उपवनों की सुरक्षा का ज़िम्मा सरकार को दिया जाता है तो इसका नतीजा इन पर पारंपरिक रूप से आश्रित समुदायों को उनके अधिकारों से वंचित करने के रूप में सामने आएगा। बीते कुछ दशकों में ऐसे कई मामले आए हैं, जब स्थानीय लोगों के वन प्रबंधन सम्बंधित अधिकार सरकार ने छीने हैं। ऐसा होने के बाद समय के साथ ये पवित्र उपवन या तो तथाकथित विकास कार्यों की भेंट चढ़े या फिर उन पर अतिक्रमण हो गया।

कई उपवन मंदिरों या धार्मिक महत्व के स्थलों के नज़दीक स्थित हैं। इन उपवनों पर पर्यटन और धार्मिक गतिविधियों का भी विपरीत असर पड़ रहा है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि इन पवित्र उपवनों का जैविक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक, मानव शास्त्रीय और आर्थिक रूप से अत्यधिक महत्व है। लेकिन ये मूल्यवान संसाधन आज चौतरफा दबाव में हैं और उन्हें बचाने के लिए तत्काल कुछ उपाय करने की ज़रूरत है। इनके संरक्षण के लिए हर राज्य में समग्र योजनाएं बनानी होंगी और उन्हें तत्काल प्रभाव से लागू भी करना होगा ताकि वनस्पतियों और प्राणियों के इन अद्भुत खज़ानों को खत्म होने से बचाया जा सके। इन योजनाओं के निर्माण के लिए राज्यों में पवित्र उपवनों और उनसे सम्बंधित जैविक संपदा व उनके सांस्कृतिक महत्व के बारे में जानकारी की तो ज़रूरत होगी ही, साथ ही यह जानना भी ज़रूरी होगा कि कितने प्रबंधकीय हस्तक्षेप

की आवश्यकता है। पवित्र उपवनों के संरक्षण के लिए सरकारी पहल अब ज़रूरी हो गई है।

अगर पवित्र उपवनों के संरक्षण से जुड़े विश्वासों व पारंपरिक विवेक के साथ वन प्रबंधन की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों का समुचित समन्वय किया जाए तो ये उपवन जैव विविधता के संरक्षण की बहुत ही उपयोगी मिसाल बन सकते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पारंपरिक ज्ञान को उचित स्थान दिए जाने और यह दर्शाने की ज़रूरत है कि कैसे स्थानीय परंपराओं के साथ शहरी संस्कृति का निर्माण किया जा सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***